श्रमण की प्रमुख विशेषताएँ

आचार्य श्री विजयराज जी म.सा.

आगम में वर्णित श्रमण की विभिन्न विशेषताओं को आचार्य श्री ने इस आलेख में 24 लक्षणों के रूप में सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है। एक प्रकार से श्रमण के सम्बन्ध में आगमों का निचोड़ इस आलेख में आ गया है। **-सम्पादक**

जीवन के दो रूप हैं- एक बाह्य तथा दूसरा आन्तरिक। बाह्य रूप पहचाना जाता है, नाम, रूप-रंग, आकार-प्रकार, वेशभूषा, अलंकरण इत्यादि से। आन्तरिक रूप पहचाना जाता है, व्यक्तित्व से। व्यक्तित्व का निर्माण शुभ-विचार, आचार और व्यवहार से होता है। श्रमण जीवन का आन्तरिक रूप उसके दिव्य गुणों से पहचाना जाता है। ''लोगे लिंग पओयणं'' यह लिंग अथवा वेशभूषा लोक प्रतीति के लिए होती है। आम व्यक्ति श्रमण की वेशभूषा से श्रमण को पहचानता है। पहली पहचान व्यक्ति का वेश-परिवेश है तो आगे की पहचान उसके उदात्त गुण हैं।

श्रमण कौन है? इस प्रश्न का उत्तर हमें प्रश्नव्याकरण सूत्र से मिलता है ''समे य जे सव्वपाणभूएसु से हु समणे'' जो समस्त प्राणियों के प्रति समभाव रखता है, वस्तुतः वही श्रमण है। समत्व और श्रमणत्व दूध और मलाई की तरह परस्पर अनुबन्धित हैं। हम यहाँ श्रमण के चौबीस लक्षणों पर विचार करेंगे।

श्रमण का पहला लक्षण है-'अणारम्भो।' आरम्भ यानी सभी प्रकार की हिंसा से मुक्त। श्रमणत्व का सम्बन्ध समत्व से है और समत्वशील श्रमण किसी भी तरह की हिंसा-पापारम्भ नहीं कर सकता, करा नहीं सकता और करते हुए का अनुमोदन नहीं कर सकता। उसका आदर्श होता है-''**वयं च वित्तिं लब्भामो ण य कोइ उवहम्मइ।**'' हम श्रमण जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार करेंगे कि जिससे किसी को भी कष्ट न हो, क्योंकि सुख का भोगी दुःख का भागीदार होता है। अपने सुख के लिए अगर हमने किसी को कष्ट पहुँचाया तो यह उसको कष्ट नहीं, स्वयं को कष्ट पहुँचाने के समान है। आचारांग सूत्र में प्रभु फरमाते हैं-

तुमं सि नाम तं चेव जं हंतव्वं त्ति मण्णसि।
तुमं सि नाम तं चेव जं अज्जावेयव्वं त्ति मण्णसि।
तुमं सि नाम तं चेव जं परियावेयव्वं त्ति मण्णसि।

जिसे तू मारना, शासित करना और परिताप देना चाहता है, वह और कोई नहीं, तू ही है, क्योंकि स्वरूप

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि से सभी जीव समान हैं। यह अद्वैत भावना ही श्रमण के अहिंसक या अनारम्भक होने की मूलाधार है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।।

श्रमण का दूसरा लक्षण है-'अपरिग्गहो।' किसी भी प्रकार का संग्रह या ममत्व न रखने वाला श्रमण होता है। श्रमण अधिक मिलने पर संग्रह न करे, क्योंकि संग्रह संघर्ष का कारण बनता है। सूत्रकृतांग सूत्र में कहा है-''परिग्गह-निविट्ठाणं वेरं तेसिं पवड्ढइ'' जो संग्रहवृत्ति में फँसे हैं, वे संसार में अपने प्रति वैर ही बढ़ाते हैं और फिर ''आरम्भपूर्वको परिग्रहः'' परिग्रह बिना आरम्भ और हिंसा के नहीं होता। हिंसा और परिग्रह का कार्य-कारण सम्बन्ध है। श्रमण के लिए प्रभु दशवैकालिक सूत्र में फरमाते हैं-'जो सदा संग्रह की भावना रखता है, वह श्रमण नहीं; श्रमण के वेश में गृहस्थ ही होता है'' इसलिए श्रमण को अपरिग्रह भावना से संवृत होकर लोक में विचरण करना चाहिए। इच्छामुक्ति की साधना श्रमण जीवन की विशिष्ट साधना है, जो अपरिग्रही बनने से पूर्ण होती है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।।

श्रमण का तीसरा लक्षण है-'इरियासमिए।' चलना जीवन व्यवहार की आवश्यक क्रिया है। इस क्रिया को श्रमण जागरूकता पूर्वक सम्पन्न करता है। प्रश्न पूछा गया-'कहं चरे?' अर्थात् कैसे चलें, जिससे पाप कर्म का बंधन न हो। इसका उत्तर दिया गया-'जयं जरे' अर्थात् जागरूकता के साथ चलें। जागरूकता ही अप्रमत्तता की प्रतीक है। आचारांग में कहा है-''जे पमत्ते गुणट्ठिए से हु दंडेत्ति पवुच्चइ'' जो विषयासक्त है, वह निश्चय ही जीवों को दण्ड (पीड़ा) देने वाला है। श्रमण जागरूक होता है इसलिए वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र की विशुद्धता से चले अथवा उसके लिए प्रयत्नशील रहे। है श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का चौथा लक्षण है-'भासासमिए।' श्रमण बोलते समय सत्य-असत्य, निर्दोष-सदोष, सावद्य-निरवद्य वचनों का पूर्ण विवेक रखकर बोले। हिंसा-द्वेष-क्लेश एवं निश्चयात्मक वचन न बोले। आचारांग सूत्र में कहा- ''अणु-वीइभासी से निग्गंथे'' जो विचारपूर्वक बोलता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ-श्रमण है। इसी तरह ''वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं'' बुद्धिमान ऐसी भाषा बोले जो हितकारी हो और अनुलोम हो यानी सभी को प्रियकारी हो। आत्मवान श्रमण दृष्ट-अनुभूत, परिमित, संदेहरहित, परिपूर्ण (अधूरी, कटी-छँटी बात नहीं) और स्पष्ट वाणी का प्रयोग करे, क्योंकि भाषा ही भावों का दर्पण होती है, किन्तु यह ध्यान रहे कि वह वाणी वाचालता से रहित हो तथा दूसरों को उद्विग्न करने वाली न हो। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।।

श्रमण का पाँचवाँ लक्षण है-''एसणासमिए।'' आहार, वस्त्र पात्रादि ग्रहण करने तथा उनका उपयोग करने में निर्दोषता का विवेक रखे। ''आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं'' श्रमण आहार की इच्छा करे, क्योंकि आहार शरीर का आधार है। किन्तु वह आहार कैसा हो? वह आहार मित और एषणीय हो। एषणीय आहार जीवन यात्रा और संयमयात्रा में सहयोगी होता है। परिमित और एषणीय आहार से न किसी प्रकार का विभ्रम पैदा होता है और न धर्म की भ्रंशना। दशवैकालिक सूत्र में कहा है-''महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अणिस्सिया'' अर्थात् आत्मद्रष्टा श्रमण मधुकर के समान होते हैं। वे कहीं किसी एक वस्तु या व्यक्ति से प्रतिबद्ध नहीं होते। जहाँ रस-गुण यानी जीवन-निर्वाह के लिए एषणीय आहार मिलता है, वहीं से ग्रहण कर लेते हैं। बृहत्कल्प भाष्य की 1331 वीं गाथा में कहा है-

अप्पाहारस्स न इंदियाइं विसएसु संपत्तन्ति।
नेव विलम्मइ तवसा, रसिएसु न सज्जए यावि।।

जो अल्पाहारी होता है, उसकी इन्द्रियाँ विषयभोग की ओर नहीं दौड़तीं, तप का प्रसंग आने पर वह क्लांत नहीं होता और न ही सरस आहार में आसक्त होता है। इसी तरह निशीथभाष्य 4154 में कहा है-

मोक्ख पसाहण हेउ, णाणादि तप्पसाहणो देहो।
देहट्ठा आहारो तेण तु कालो अणुण्णाओ।।

वैसे ज्ञानादि मोक्ष के साधन हैं, परन्तु उन ज्ञानादि को साधने में देह ही सहायक है। देह का साधन आहार है, अतः श्रमण साधक को समयानुकूल आहार करने की अनुज्ञा दी गई है। परन्तु सच्चा साधक ''नाइमत्त पाणभोयण- भोई से णिग्गंथे'' (आचारांग) आवश्यकता से अधिक भोजन नहीं करता है। ऐसा ब्रह्मचर्य का साधक सच्चा श्रमण निर्ग्रन्थ है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान् है!!

श्रमण का छठा लक्षण है-''आयाणभंडनिक्खेवणासमिए।'' श्रमण अपनी निश्रा में रहे हुए वस्त्र-पात्रादि उपकरणों को लेने, रखने, उठाने में पूर्ण विवेक रखे, क्योंकि ''विवेगे धम्ममाहु'' प्रभु ने विवेक में ही धर्म कहा है। अयतना से रखना, उठाना, लेना-देना आदि जीव-विराधना के साथ आत्मविराधना का भी कारण बन सकता है। श्रमण की हर क्रिया अहिंसा को केन्द्र में रखकर होती है। दैनंदिन व्यवहार में अहिंसा का दीप प्रज्वलित रहना चाहिए, ताकि जीव विराधना से बचा जा सके। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का सातवाँ लक्षण है-''उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपरिट्ठावणिया-समिए।'' अर्थात् श्रमण उच्चारादि परिष्ठापन योग्य वस्तुओं के परिष्ठापन में विवेक रखे। अविवेवक से किया गया कार्य अशोभनीय होता ही है, और जिनशासन की अवहेलना करने वाला भी बन जाता है। अतः श्रमण को शुद्धाचार का पालक, पोषक एवं संरक्षक बनकर अपनी हर प्रवृत्ति को संयम की परिधि में ही सम्पन्न करना चाहिए। ''अप्पा हु खलु सययं रक्खिअव्वो'' अपनी आत्मा को पापों से सतत बचाये रखना चाहिए। कहा गया है- ''भावे य असंजमोसत्थं'' भावदृष्टि से संसार में असंयम ही सबसे बड़ा शस्त्र है। संयम अशस्त्र है और असंयम शस्त्र है। जो एक असंयम से बचता है वह सारे शस्त्रों से बच जाता है। हे श्रमण ! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।।

श्रमण का आठवाँ लक्षण है-''मणसमिए'' श्रमण अपने मन को सदा शुभ भावों में प्रवृत्त रखे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान, मौन, स्वाध्यायादि से मन शुभ भावों में रमण करता है। दशवैकालिक चूर्णि में कहा है-''मणसंजमो णाम अकुसलमणनिरोहो, कुसलमणउदीरणं वा'' अर्थात् अकुशल मन का निरोध और कुशल मन का प्रवर्तन ही मन का संयम है। उत्तराध्ययन सूत्र के तेईसवें अध्ययन में केशीश्रमण से गौतम स्वामी कहते हैं-

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावइ।
तं सम्मं तु णिगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कंथगं।।

यह मन बड़ा साहसिक, भयंकर और दुष्ट घोड़ा है, जो बड़ी तेजी से चारों ओर दौड़ रहा है। मैं धर्मशिक्षा रूपी लगाम से उसे अच्छी तरह वश में किए हुए हूँ। धर्मशिक्षा की लगाम लगाये बिना मन संयम में प्रवृत्त नहीं हो सकता, इस सत्य को समझने वाला श्रमण मनसमित होता है। आचारांग में कहा है-''मणं परिजाणइ से णिग्गंथे'' जो अपने मन को अच्छी तरह परखना जानता है, वही सच्चा निर्ग्रंथ श्रमण होता है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।।

श्रमण का नौवां लक्षण है-''वयसमिए'' वचन संयम में प्रवृत्त रहने वाला श्रमण होता है। ऐसा श्रमण कभी हास्य-भय-द्वेष-क्लेशकारी वचन नहीं बोलता और बोलने से पहले ''अणुविचिंतिया वियागरे'' सोच-विचार कर बोलता है। बोलने से पहले सोचना समझदारी है और बोलने के बाद सोचना नासमझी है। हित-मित-मृदु और विचारपूर्वक बोलना न केवल वाणी का संयम है, बल्कि वाणी का विनय भी है। ऐसा वचन संयम और वाणी विनय श्रमण अपने जीवन में धारण करते हैं। ''नाइवेलं वएज्जा'' सूत्रकृतांग में साधक के लिए कहा गया है कि वह असमय में न बोले, क्योंकि असमय में एवं अधिक बोलना वाचालता है और वाचालता सत्य वचन का विघात करने वाली है। वचन समिति से समित श्रमण निरवद्य बोलकर जिनशासन की महती प्रभावना करता है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।।

श्रमण का दसवाँ लक्षण है-''कायसमिए'' श्रमण काया की प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाये, उन्हें असंयमकारी प्रवृत्तियों में न लगाये, बल्कि तप-संयम में अपनी काया को समर्पित कर दे। आचारांग में कहा है- ''एगमप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरगं'' साधक आत्मा को शरीर से पृथक् जानकर भोगलिप्त शरीर को धुन डाले। ''कसेहिं अप्पाणं जरेहिं अप्पाणं'' अपनी काया को कृश करे, अपनी काया को जीर्ण करे। तन-मन को हल्का करे, भोगवृत्ति को जर्जर करे। इस आगम-आज्ञा को सन्मुख रखकर श्रमण काया के ममत्व का व्युत्सर्ग करे और इस काया को तप में लगाए। कहा है-

बलं थामं च पेहाए, सद्धमारोग्गमप्पणो।
खेत्तं कालं च विण्णाय, तहप्पाणं निजुंजए।।

अर्थात् अपना बल, दृढ़ता, श्रद्धा, आरोग्य तथा क्षेत्र-काल को देखकर साधक अपनी आत्मा को तपश्चर्या में लगाए। यही काय-संयम इन्द्रियों की दासता से मुक्ति दिलाता है। हे श्रमण! इस अर्थ में सचमुच में तू महान है।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण का ग्यारहवाँ लक्षण है-''मणगुत्ते'' अशुभ मन का निरोध करना श्रमण की मनोगुप्ति है। मनोगुप्ति से ही अशुभताओं का वर्जन होता है और चित्त की निर्मलता प्राप्त होती है। दशाश्रुतस्कंध के अनुसार''णेमचित्तं समादाय, भुज्जो लोयंसि जायइ'' निर्मल चित्त वाला श्रमण संसार में पुनः पुनः जन्म नहीं लेता और निर्मल चित्त वाला ही ध्यान की सही स्थिति को प्राप्त करता है। दशाश्रुतस्कंध 5/1 के अनुसार ''ओयं चित्तं समादाय, झाणं समुप्पज्जइ। धम्मे हिओ अविमणे, णिव्वाणमभिगच्छइ।।'' चित्तवृत्ति के निर्मल होने पर ही ध्यान की सही अवस्था प्राप्त होती है। जो बिना किसी विमनस्कता के निर्मल मन से धर्म में स्थित है, वह निर्वाण को प्राप्त करता है। मनोगुप्त श्रमण के संकल्प-विकल्पों के आँधी-तूफान थम जाते हैं और निराकुलता में आनन्दानुभूति होने लगती है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का बारहवाँ लक्षण है-''वयगुत्ते'' अशुभ वचनों का निरोध करने वाला श्रमण है। वचनगुप्ति से निर्विचारता का विकास होता है। निर्विचारता से निर्विकारता बढ़ती है और वीतरागता निकट होती है। बोलने वाला कभी-कभी बोलकर अनेक प्रकार की उलझनें बढ़ा लेता है, जबकि वचनगुप्ति रखकर मौनी उन प्राप्त उलझनों को सुलझा लेता है। बोलना समस्या है तो मौन रखना समाधान है। स्थानांग सूत्र में कहा है- ''इमाइं छ अवयणाइं नो वदित्तए-अलीगवयणे, हीलियवयणे, खिंसितवयणे, फरुसवयणे, गारत्थिय वयणे, विउसविंतं वा पुणो उदीरित्तए (स्थानांग 6/3) छह तरह के वचन, नहीं बोलने चाहिए- असत्य वचन, तिरस्कार युक्त वचन, झिड़कते हुए वचन, कठोर वचन, साधारण मानवों की तरह अविचार पूर्ण वचन और शांत हो चुके कलह को फिर से भड़काने वाले वचन। श्रमण इस तरह के वचनों को न बोले। ऐसा श्रमण वचन गुप्ति की साधना करता है। विचारपूर्वक सुंदर और परिमित शब्द बोलने वाला सज्जनों में प्रशंसा प्राप्त करता है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का तेरहवाँ लक्षण है-''कायगुत्ते'' अशुभ कायिक प्रवृत्तियों का निरोध करने वाला श्रमण होता है। अपनी काया जब-जब भी पाप-प्रवृत्ति की ओर अभिमुख हो, तब श्रमण उस काया का संगोपन करते हैं। सूत्रकृतांग में कहा है-

जहा कुम्मे सअंगाइं, सए देहे समाहरे।
एवं पावाइँ मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे।।

कछुआ जिस प्रकार अपने अंगों को अंदर में समेट कर खतरे से बाहर हो जाता है, वैसे ही मेधावी श्रमण भी अध्यात्म योग के द्वारा अन्तर्मुखी होकर अपने को पाप-प्रवृत्तियों से सुरक्षित रखे। भगवती में कहा है- ''भोगी भोगे परिच्चयमाणे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ'' अर्थात् भोग का सामर्थ्य होने पर भी जो कायिक भोगों का परित्याग करता है, वह कर्मों की महती निर्जरा करता है। उसे मुक्ति रूप महाफल की प्राप्ति होती है। ''देहदुक्खं महाफलं'' की आदर्श अवधारणा को सन्मुख रखकर श्रमण अपने देह के दुःखों को समभाव से भोगकर मोक्ष रूपी महाफल की प्राप्ति करते हैं। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण का चौदहवाँ लक्षण है- 'चाई' अर्थात् त्यागी। श्रमण का जीवन त्याग का मूर्त्त रूप होता है। वे कष्टों में घबराते नहीं। धैर्य से उन कष्टों को सहन कर अपने त्याग-पथ पर आगे बढ़ते हैं। श्रमण जीवन विवशता, परवशता या परतन्त्रता से ग्रहण नहीं किया जाता। श्रमण का त्याग स्ववश और स्वतन्त्रता के साथ होता है। दशवैकालिक सूत्र के दूसरे अध्ययन में कहा गया है- "अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ।" जो पराधीनता के कारण विषय भोगों का उपभोग नहीं कर पाते, उन्हें त्यागी नहीं कहा जा सकता। फिर त्यागी कौन? इस सवाल का जवाब इससे अगली गाथा में दिया गया-

जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठिकुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ।।

जो मनोहर और प्रिय भोगों के उपलब्ध होने पर भी स्वाधीनता से यानी स्वेच्छापूर्वक उन्हें पीठ दिखा देता है- त्याग देता है; वस्तुतः वही त्यागी कहलाता है। श्रमण ऐसे ही त्यागी होते हैं। आचारांग में कहा है-"तं परिण्णाय मेहावी, इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासि पमाएणं" मेधावी श्रमण आत्मज्ञान के द्वारा यह निश्चय कर लेता है कि मैंने पूर्व जीवन में प्रमादवश जो कुछ भूलें की हैं, वे अब कभी नहीं करूँगा। इस प्रतिज्ञा के साथ श्रमण आजीवन चलते हैं और जीवनयात्रा में आने वाले अनुकूल-प्रतिकूल कष्ट-संकट-प्रसंगों में धैर्य धारण करते हैं, क्योंकि वे श्रमण "अंतरं च खलु इमं संपेहाए धीरो मुहुत्तमवि णो पमायए" अर्थात् अनन्त जीवन-प्रवाह में मानव-जीवन को बीच का एक सुअवसर जानकर धैर्य गुण सम्पन्न होकर वे श्रमण मुहूर्त्त भर के लिए भी प्रमाद नहीं करते। प्रमाद के त्यागी श्रमण ही सच्चे श्रमण कहलाते हैं। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का पन्द्रहवाँ लक्षण है- 'लज्जू'। श्रमण लज्जावान होता है। कल्याण के इच्छुक साधक लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य में स्वयं को प्रतिष्ठित करते हैं। पाप के प्रति सलज्ज श्रमण दुःख से बचता है और अव्याबाध सुख को प्राप्त करता है। आचारांग में कहा है-"लज्जमाणा पुढो पासे" हे श्रमण, तू उन व्यक्तियों को देख जो अधर्म करते हुए भी लज्जित नहीं होते। निर्लज्ज व्यक्ति दम्भी होते हैं। आचारांग निर्युक्ति में कहा है-"न हु कइतवे समणो" जो दम्भी है, वह श्रमण नहीं हो सकता। श्रमण निर्दम्भ होते हैं। वे कभी अपनी क्रियाओं का न दम्भ करते हैं, न प्रदर्शन। वे सरल, विनम्र और लज्जावान होते हैं। वे ज्ञानपूर्वक अपनी साधना और संयम में रत रहते हैं। ऐसे श्रमण भावश्रमण कहलाते हैं। उत्तराध्ययन निर्युक्ति में उक्त है- "नाणी संजम सहिओ, नायव्वो भावओ समणो।" हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का सोलहवाँ लक्षण है-'धण्णे' अर्थात् संयम साधना में कृतार्थता-धन्यता का अनुभव करने वाला श्रमण होता है। जीवन में कषायों का शमन इन्द्रियों का दमन, विषयों का वमन होता है, तब ही संयम में रमण होता है। सूत्र आचारांग में कहा है-"एस वीरे पसंसिए जे ण णिविज्जइ आराहणाए" जो अपनी साधना में उद्विग्न नहीं होता, वही वीर श्रमण प्रशंसित होता है। सकारात्मक चिन्तन ही असन्तुष्टि और

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

असमाधि का समाधान बनता है। उत्तराध्ययन में इसी सत्य की पुष्टि करते हुए कहा गया-

अज्जेवाहं न लब्भामो, अवि लाभे सुए सिया।
जो एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए।।

"आज नहीं मिला तो क्या हुआ? कल मिल जायेगा" जो यह विचार कर लेता है, वह कभी अलाभ के कारण अशांत नहीं होता। सदैव इस सकारात्मक सोच के साथ जीने का अभ्यासी श्रमण आचारांग में कहे अनुसार दुःख के क्षणों में घबराता नहीं। "सहियो दुक्खमत्ताए पुट्ठो नो झंझाए" अर्थात् सत्य की साधना को समर्पित श्रमण सब ओर से दुःखों में घिरा होकर भी घबराता नहीं है, विचलित नहीं होता है। सदैव अपनी संयम-साधना में धन्यता का अनुभव करता है। धन्यता-अनुभूति संतुष्टि का पथ है। इसके लिए दशवैकालिक सूत्र में कहा है- "संतोसपाहन्नरए स पुज्जो" जो संतोष के पथ पर चलता है और संतोष भावों में रमण करता है, वही पूज्य श्रमण है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का सतरहवाँ लक्षण है- "खंतिखमे" समर्थ होते हुए भी श्रमण क्षमाशील होते हैं। सच्ची क्षमा आन्तरिक शान्ति के बिना नहीं हो सकती। श्रमण शान्ति के देवता होते हैं। उनकी भावक्षमा, भाषा-क्षमा और भंगिमा-क्षमा नदी के प्रवाह की तरह बहती है। आचारांग में कहा है- "भूएहिं न विरुज्झेज्जा" श्रमण किसी भी जीव के साथ वैर-विरोध न करे। वैर से वैर, विरोध से विरोध इस तरह बढ़ते हैं, जैसे आग से आग बढ़ती है। आग तब बुझती है जब उसका खाना उसे नहीं मिलता है, अथवा उसके प्रतिपक्षी तत्त्व पानी-रेत आदि उसे प्राप्त होते हैं, तो वह बुझ जाती है। जिस श्रमण पुष्प से क्षमा की महक नहीं आती वह श्रमण वेश में कागज का फूल होता है। क्षमा से ही श्रमण श्रमणत्व की गरिमा से खिलता है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का अठारहवाँ लक्षण है- "जिइंदिए" श्रमण इन्द्रियों का विजेता होता है। बहिर्मुखी इन्द्रियाँ संसार की ओर भागती हैं और "खाणी अणत्थाण उ कामभोगा" ये कामभोग अनन्त दुःखों की खान हैं, यह उसे समझ में नहीं आता। अगर इन्द्रिय-निग्रह न हो तो मनोनिग्रह नहीं हो सकता और मनो-निग्रह के बिना साधना में स्थिरता प्राप्त नहीं होती। आगम कहते हैं-" एगप्पा अजिए सत्तु" स्वयं की अविजित-असंयत आत्मा ही स्वयं का एक शत्रु है। बहिरात्मा को अन्तरात्मा की ओर अभिमुख करने के लिए इंद्रिय संयम आवश्यक है, दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा 285 में कहा है-

सद्देसु अ रूवेसु अ गंधेसु रसेसु तह य फासेसु।
न वि रज्जइ न वि दुस्सइ, एसा खलु इंदिय अप्पणिही।।

शब्द, रूप, गंध और स्पर्श में जिसका चित्त न तो अनुरक्त होता है और न द्वेष करता है; उसी का इन्द्रिय निग्रह प्रशस्त होता है। श्रमण इन्द्रिय विषयों पर संकल्पपूर्वक नियमन करता है तथा परिणामदर्शी बनकर जीता है। आचारांग में कहा गया है-"आयंकदंसी न करेइ पावं" जो इंद्रिय-विषयों के आसेवन से उत्पन्न होने वाले

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आतंक को देखता है वह पापों से दूर रहता है। आतंकदर्शी कोई पाप नहीं करता। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का उन्नीसवाँ लक्षण है- 'सोहिए।' श्रमण मन को शुद्ध, पवित्र और सरल बनाने वाला होता है। मानसिक पवित्रता और शुद्धता बिना सरलता के नहीं आती। उत्तराध्ययन में कहा है- ''सोही उज्जूभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ'' ऋजु अर्थात् सरल आत्मा की विशुद्धि होती है और विशुद्ध आत्मा में ही धर्म ठहरता है। श्रमण धर्म हो या श्रावक धर्म, दोनों प्रकार के धर्म सरलता से प्रतिष्ठित होते हैं। हृदय की वक्रता ही बुद्धि में जड़ता पैदा करती है और जिनकी बुद्धि जड़ और हृदय वक्र होता है, वे धर्म के पात्र नहीं होते। श्रमण शुद्ध होता है, सरल होता है। वह किसी पाप-अपराध-स्खलना को छुपाता नहीं है। छद्मस्थ अवस्था में गुण-दोषों का हो जाना संभव है, किन्तु सरल हृदय श्रमण उसकी आलोचना, निंदा, गर्हा करके अपनी आत्मा को उन पापों तथा दुष्कृत्यों से अलग करता है। उत्तराध्ययन में कहा है-''अविसंवायणसम्पन्नयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ'' दम्भरहित, अविसंवादी आत्मा ही धर्म का सच्चा आराधक है। श्रमण की साधना में स्थिरता, प्रगतिशीलता एवं विशुद्धता कब आती है? जब वह सरलतापूर्वक अपने जीवन में जागरूक रहता है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का बीसवाँ लक्षण है- 'अनियाणे।' पौद्गलिक (भौतिक) सुखों की प्राप्ति के लिए कभी निदान यानी फलाशंसा न करने वाला श्रमण होता है। उत्तराध्ययन में कहा है-''सायासोक्खेसु रज्जमाणा विरज्जइ'' वस्तुतः धर्म पर श्रद्धा होने पर श्रमण साता और सुख की आसक्ति से विरक्त हो जाता है। इस विरक्ति में कभी न्यूनता आ जाये तो प्रभु फरमाते हैं-''सव्वे कामा दुहावहा'' सभी काम-भोग अन्ततः दुःखावह ही होते हैं। इस चिन्तन को सन्मुख रखकर ही श्रमण किसी भी तरह की फलाशंसा न करे। फलाशंसा के चक्रव्यूह में उलझने वाले श्रमण की दृष्टि प्रवृत्ति पर नहीं, परिणाम पर टिकी रहती है, जबकि श्रमण को निष्काम भाव से अपनी प्रवृत्ति के लिए समर्पित रहना चाहिए। शास्त्रकार कहते हैं-''कामे पत्थेमाणा अकामा जंति दुग्गइं'' कामनाओं की पूर्ति की लालसा में प्राणी एक दिन उन्हें बिना भोगे दुर्गति में चला जाता है। फलाशंसा दुष्पूर नदी के समान है। श्रमण अनासक्त होकर जीता है। वह मिट्टी के सूखे गोले के समान कहीं भी चिपकता नहीं। उत्तराध्ययन में कहा- ''विरत्ता हु न लग्गंति जहा से सुक्कगोलए'' अर्थात् मिट्टी के सूखे गोले के समान साधक विरक्त होता है। वह कहीं भी चिपकता नहीं है और न उसके रागरहित भावों से कर्मबंधन ही होता है। आचारांग में कहा है-''तुमं चेव सल्लमाहट्टु'' अर्थात् निदान तेरे लिए शल्य यानी कांटा है। इस कांटे को उत्पन्न ही न होने दे। जो इस कांटे से मुक्त है, वह सुखी है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का इक्कीसवाँ लक्षण है-'अप्पुस्सुए' पौद्गलिक वस्तुओं के प्रति उत्सुकता न रखने वाला श्रमण होता है। आन्तरिक सद्गुणों का जितना विकास होता है, उतना आत्मिक आह्लाद बढ़ता जाता है। फिर बाहरी कुतूहल/कौतुकता की ओर उत्सुकता घटती जाती है। राग का त्याग श्रमणत्व का अलंकार है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

औपपातिक सूत्र में कहा है-

धम्मं णं आइक्खमाणा तुब्भे उवसमं आइक्खह।
उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह ।।

शिष्य कहता है- प्रभो! आपने धैर्य का उपदेश देते हुए उपशम का उपदेश दिया और उपशम का उपदेश देते हुए विवेक का उपदेश दिया, अर्थात् धर्म का सार उपशम यानी समभाव है और समभाव का सार है विवेक। विवेक से उत्सुकता पर नियन्त्रण लगता है। दशवैकालिक में कहा है-

वियाणिया अप्पगमप्पएणं।
जो रागद्दोसेहिं समो से पुज्जो ।।

जो अपने से अपने को जानकर रागद्वेष के प्रसंगों में सम रहता है, वही पूज्य साधक होता है। आचारांग में भी यही बात आई है- ''पुरिसा! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमुच्चसि'' हे साधक! तू अपने आपका ही निग्रह कर। स्वयं के निग्रह से ही तू दुःख से विमुक्त हो सकेगा। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का बावीसवाँ लक्षण है- 'अबहिल्लेसे' अपनी लेश्याओं को अशुभता की ओर नहीं जाने देने वाला श्रमण होता है। भावों की अशुभता असंयम है और असंयम श्रमणत्व का विघातक शस्त्र है। आचारांग निर्युक्ति में कहा है-''भावे अ असंजमो सत्थं'' भावदृष्टि से संसार में असंयम ही सबसे बड़ा शस्त्र है। अशुभ लेश्या आत्मपतन एवं आत्मशक्तियों के आच्छादन का कारण है। श्रमण अपनी लेश्याओं के शुभत्व की ओर स्थिर रहता है। ''अप्पा हु खलु सययं रक्खिअव्वो'' अपनी आत्मा को पापों से सतत बचाये रखना चाहिए। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का तेईसवाँ लक्षण है-'सुसामण्णरए' दस प्रकार के यतिधर्म में रमण करने वाला श्रमण होता है।

पहला यति धर्म है- **खंति!** क्रोध को जीते बिना क्षमा की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए श्रमण क्रोधजयी होता है।

दूसरा यतिधर्म है- **मुत्ति!** जो श्रमण कामनाओं को पारकर जाता है, वस्तुतः वही मुक्त श्रमण है।

तीसरा यतिधर्म है- **अज्जवे!** श्रमण ऋजुधर्मा होता है।

चौथा यतिधर्म है- **मद्दवे!** श्रमण मृदुता गुण से सम्पन्न होता है।

पाँचवा यतिधर्म है- **लाघवे!** श्रमण लघुता गुण से सम्पन्न होता है।

छठा यतिधर्म है- **सच्चे!** श्रमण सत्य को समर्पित होता है।

सातवाँ यतिधर्म है- **संजमे!** श्रमण का मन-इन्द्रियों से संयमी होता है।

आठवाँ यतिधर्म है- **तवे!** श्रमण तपःपूत होता है।

नौवाँ यतिधर्म है-**चेइए!** श्रमण ज्ञानयुक्त होता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दसवाँ यतिधर्म है- **बंभचेरवासे!** श्रमण ब्रह्मचर्य से पवित्र होता है।

इस प्रकार के यतिधर्मों से श्रमण सुसम्पन्न होता है। हे श्रमण! इस अर्थ में तू सचमुच में महान है।

श्रमण का चौबीसवाँ लक्षण है- 'दंते' श्रमण क्रोधादि कषायों का तथा बहिरात्मा का दमन करने वाला होता है। उत्तराध्ययन में कहा गया है-

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
माहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं, वहेहिं य।।

वध और बंधनों से दूसरे मेरा दमन करें, इससे तो अच्छा यही है कि मैं स्वयं ही संयम और तप के द्वारा अपना दमन कर लूँ। श्रमण इसी प्रकार का चिन्तन करता है। और भी-

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य।।

श्रमण सोचता है कि मुझे अपने आप पर नियंत्रण रखना चाहिए, क्योंकि यही सबसे कठिन कार्य है। जो अपने पर नियंत्रण रखता है, वह इस लोक तथा परलोक दोनों में सुखी होता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org